शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 अप्रैल 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

वैदिक साहित्य में ग्रामीण अर्थ व्यवस्था

डॉ. गोपालकृष्ण शर्मा [1], डॉ. कुंवरसिंह मुझाल्दा [2] (सहायक प्राध्यापक)
संस्कृत
शासकीय संस्कृत महाविद्यालय
इन्दौर, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

वैदिककाल से लेकर आज तक संस्कृत साहित्य में चार पुरूषार्थो के अन्तर्गत धर्म के साथ अर्थ को द्वितीय क्रम पर रखा गया है। वेद विश्व की धरोहर है। प्राचीन भारत के धार्मिक सांस्कृतिक तथा भारतीय सनातन आर्य संस्कृति एवं ग्रामीण संस्कृति के साक्षात उपादान हैं। हजारों वर्ष पूर्व शहरी सभ्यता विकसित नहीं हुई थी। नागर सभ्यता का ही वर्णन प्राप्त होता है। अन्य सभी वर्णन ग्रामीण सभ्यता के ही प्राप्त होते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में वैदिक संस्कृति में ग्राम्य व्यवस्था का अध्ययन किया गया है

वैदिक संस्कृति में ग्राम्य जीवन

ग्राम्य जीवन का मुख्य आधार कृषि कार्य था। यद्यपि ग्रामीण आव श्यकतानुसार कृषि पर आधारित छोटे-छोटे उद्योग धन्धे अथवा कुटीर उद्योग भी विकसित होने लगे थे। वेदों में विभिन्न कार्यो को करने वाले शिल्पियों के नाम से यह स्पष्ट होता है कि रथकार , कुम्भकार, चर्मकार, वप्ता तक्षक , भिषक आदि शब्द उस समय की अर्थोपार्जन की प्रवृतियों की ओर इशारा करते हैं। ग्राम्य अर्थ व्यवस्था के कुछ प्रमुख बिन्दुओं के अन्तर्गत हम इनका अध्ययन कर सकते है :

1 कृषि व्यवस्था - वेदों में स्पष्ट रूप से कृषि कर्मण तथा कृषि करने के निर्दे श प्राप्त होते है। ऋग्वेद में 'कृष्टि' शब्द (1.15.11) इसका प्रमाण है। वैदिक ऋषि भी कृषि का आह्वान करते थे। जैसे 'कृषिमिति कृषष्व' (1034.13) तथा 'सुसस्त्या भवात्विति सुसस्या कृष्वी कृधि ' (1.4.10) । और तो और वैदिक ऋषि दुर्व्यसनों को त्यागकर कृषि कार्य करने की प्रेरणा देते दिखाई देते हैं। वेदो मे कृषि कार्य से सम्बन्धित अनेक शब्द इसके प्रमाण हैं यथा - अप्नवती (उपजाऊ) आर्तना (बंजर) अवत (कूप) खिल (चरागाह) कृषन्तः (जुताई) वपन्तः (बुआई) लुनन्तः (कटाई) मृणन्तः (मणाई) आदि अनेक शब्द कृषि कार्यों की व्याख्या करते प्रतीत होते है । यथा -

युनक्त सीरा वियुगा तनोत कृते योनो वयतेह बीजम्।

विराज मुष्टि सभरा असन्नो इत् सृण्यः पक्वमा यवम्।- अथर्व 3/17/2

ऋग्वेद व अथर्ववेद के पश्चात यजुर्वेद में भी कृषि कार्यो का उल्लेख मिलता है :

'कृष्यै त्वा क्षेमायत्वा, रय्यैत्वा पोषाय त्वा' यजु - 9.22

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमिति कृष स्व वित्तै रमस्व बहुमन्यमानः। ऋग् - 10,34.13

2 पशुपालन - कृषि के बाद वैदिक ग्राम्य जीवन की धुरी पशुपालन था , पशु ओं मे गाय को सर्वाधिक महत्व दिया जाता था म, क्योंकि गाय के बछड़े बैल बनकर कृषि कार्य में महत्वपूर्ण

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 अप्रैल 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

योगदान देते थे। इसलिए गाय को 'अघ्न्य' अर्थात् जिसका वध नहीं किया जा सकता , ऐसा बताया गया है। केवल गाय ही नहीं घोड़े, बकरी आदि का भी वर्णन मिलता है - तस्मादष्वा अजायन्त ये के चोभयादतः गावो हि जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ' (ऋग - 10.10.8) अतः गाय, घोड़े, बकरी आदि सभी पाले जाते थे। महर्षि व सिष्ठ के पास पांच हजार गायों का उल्लेख मिलता है। राजा पृथुश्रवा के पास 70 हजार गाय, घोड़े, ऊँट तथा अश्व थे । उर्णावती (भेड़ो) का उल्लेख भी मिलता है।

3 वाणिज्य व्यापार - अथर्ववेद का एक सूक्त वाणिज्य के नाम से है जिसमें इन्द्र को एक व्यापारी कहा गया है। कहा गया है कि क्रय व विक्रय ये दोनों ऐश्वर्य की वृध्दि करने वाले हैं तथा व्यापारी का चरित्र ऊंचा होना चाहिए -

इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि,
सन एतु पुरएता नो अस्तु । अथर्व 3115-1
शुनं नो अस्तु प्रपणो विकयश्च
शुनं नो अस्तु चरित्रमुत्थितं च । अथर्व 3.11514

वेदों में वस्त्रोद्योग के भी अनेक मंत्र हैं। उस काल में सूती, उनी, रेशमी वस्त्रों का प्रचलन तथा व्यापार होता था। सूती कपड़े का प्रचलन अधिक था। वस्त्र बुनने वाले को 'वासोवाय' कहते थे, जुलाहे भेड़ों के उन से भी वस्त्र बनाते थे , रेशमी वस्त्र को 'कौषेय' कहा जाता था।

अधिवस्त्रा सुवसनान्यर्ष। ऋग 9/97/50
वासोवायो 5वीं नामा वासांसि मर्मृजत् । ऋग् 10.26.6

उद्योग व्यवसाय के लिए पुरूषार्थी होना बहुत आवश्यक है। अकर्मण्य उद्योग नहीं कर सकते हैं, ऐसा अनेक नीति वाक्यों में भी उल्लेख है यथा - उद्योगिंन पुरूष सिहंपुपैति लक्ष्मी । चाणक्य के अर्थ शास्त्र में भी नौकाध्यक्ष सीताध्यक्ष, हस्त्यध्यक्ष गोध्यक्ष जैसे शब्द (प्र. 35 अ. 19) व्यवसाय की ओर ही संकेत करते हैं।

4 शिल्पकार - वेदों में पंचायत व्यवस्था का सुचारू संचालन होता था। ग्रामणी या ग्राम प्रधान शब्द महत्वपूर्ण था। वह पूरे गांव की व्यवस्था का संचालन करता था। छोटे-छोटे शिल्पी ग्रामीण व्यवस्था के साथ-साथ अर्थोपार्जन व सुदंरता का भी निर्माण करते थे जैसे, रथकार, कर्मकार भिषक, तक्षक, वप्ता, कितव ये शब्द शिल्पज्ञान का प्रमाण देते हैं। कितव शब्द ध्यान देने योग्य है ऋग्वेद में पूरा का पूरा सूक्त जुआरी पर आधारित है। यद्यपि जुआरी की भरपेट निन्दा की गई है द्युत कर्म को बुरा कहा गया है फिर भी ग्रामीण जीवन का आव श्यक अंग, मनोरंजन का साधन 'टाइमपास' द्युतक्रीड़ा था, अथवा ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का आव श्यक अंग था। धर्म शास्त्र के आचार्य पी वी काणे ने ऐसे 61 से अधिक शब्दों की सूची प्रस्तुत की है तथा सिद्ध किया है कि कुटीर व गृह उद्योग का बडा संजाल उस समय भी था। ग्राम निर्माण तथा नगर निर्माण का वर्णन मिलता है जैसे शम्बर नामक राक्षस ने प्रस्तरों से दुर्ग बना लिया था (ऋग 4.30.20) विशाल ग्रामों को महाग्राम कहते थे। काठक संहिता, मैत्रायमी संहिता में काम्पील्यादि 16 नगरों के निर्माण का उल्लेख मिलता है। ऐसे कई शब्द प्राप्त होते हैं जो किसी न किसी व्यवस्था या शिल्प का बोध कराते हैं - चर्मकारः, कर्मारः तष्टा, सूतः आदि।

5 यात्रा व्यापार - ऋग्वेद के अनुसार अश्व, श्वान तथा स्थल मार्ग से यात्रा व्यापार भी होता था। व्यापारी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर व्यापार करते थे। (ऋग. 8/36/28) तुग्र नामक राजपुत्र की दो बार यात्रा व्यापार का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद का कथन है जल, थल

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 अप्रैल 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

तथा आकाष तीनों मार्ग से व्यापार होता था ये पन्थानों बहवो देवयाना
अन्तरा द्यावा पृथिवी सं चरन्ति। अथर्व 3.15.2
भृगु ने दस शा स्त्रों का वर्णन किया है। कृषिशास्त्रम्, जलशास्त्रम्, खनिशास्त्रम्, नौकाशास्त्रम्, रथाशस्त्रम्, अग्नियाशास्त्रम्, प्राकारशास्त्रम्, नगर शास्त्रम्, यन्त्रशास्त्रम्, वेश्वशास्त्रम्। ये सभी शब्द किसी न किसी उद्योग व्यवसाय की ओर संकेत करते है।
इस प्रकार वैदिक ग्राम अपनी आर्थिक व अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर लेते थे। अन्य किसी ग्राम से वे ज्यादा अपेक्षा नहीं रखते थे। ग्राम के निवासी ही अन्नादि भोज्य पदार्थ , कृषि कर्म, दूध, दही, घी आदि पशुपालन से उत्पन्न करते थे। गाँवों में भेड़ें तथा बकरियां , गाय, घोड़े पाले जाते थे। उनके कम्बल बनाये जाते थे। रूई की पैदावार भी होती थी सूत व कपड़े बुनने का वर्णन इसका प्रमाण है। बुनने का काम स्त्रियाँ ही करती थीं , बढई लोग युध्द व यात्रा के लिए रथादि का निर्माण करते थे तथा आर्यो के लिए उपयोगी लकड़ी का सामान बनाते थे। लोहार हल, कुम्हार, कुम्भ, कलश उखा आदि मिट्टी के बर्तन बनाते थे। पानी तथा मधु रखने के लिए कुछ लोग 'चाम' (अजिन) को साफ करके बड़े-बड़े बर्तन बनाते थे जिन्हें दृति कहा जाता था।
ऐसे लोगों का नाम चर्मन्न (ऋ 8/5/38) दिया गया है। प्रत्येक गांव में हज्जाम (नाई) (वप्ता ऋ. 10/141/4) होते थे। लोगों का स्वास्थ्य देखने के लिए भिषक अर्थात वैद्य भी होते थे। (ऋग 2/33/4) वैदिक काल में इसलिए आयुर्वेद इतनी प्रगति कर गया कि उसे स्वतंत्र उपवेद रूप में मान्यता मिल गई। सामवेद का संगीत इस बात का साक्षी है कि ग्रामीण तथा वैदिक ऋषि स्वरलहरियों से भी भलीभांति परिचित थे। संगीत विद्या का उनका ज्ञान किसी से कम न था \।
इस प्रकार वैदिक ग्राम जीवन की आव श्यक सामग्रियों के लिए किसी दूसरे पर अवलम्बित न रहकर पूर्णतया स्वावलम्बी था।

निष्कर्ष

प्राचीन भारत की ग्राम व्यवस्था स्वावलंबन आधारित थी। ब्रहम विद्या, वस्त्र विद्या, गो विद्या मधु विद्या, जल विद्या, ऊर्जा विद्या, परिवहन विद्या आदि विद्याओं का पूरा विकास हुआ था। भारत के गाँव में स्वराज्य स्थापित करने के लिए के एक बार पुन: वैदिक व्यवस्था की ओर देखने की आवश्यकता है।